भगवान पद्मनन्दि आचार्य मुनि भावलिंगी सन्त इस भरतक्षेत्र में लगभग ९०० वर्ष पहले हो गये। उन्होंने यह एक ऋषभदेव भगवान की स्तुति का कथन किया है। भगवान ऋषभदेव तो बहुत कोडाकोडी सागरोपम पहले हो गये। उनको मानो समवसरण में विराजमान हैं, ऐसे समीपता देखकर भक्ति करते हैं, ऐसा वर्णन करने में आता है। भगवान की भक्ति शुभभाव है, धर्म नहीं। वजुभाई!

धर्मी को आत्मा का ज्ञानानन्द शुद्ध स्वरूप है, शुद्ध चिदानन्दमूर्ति अनादि-अनन्त आनन्द और पवित्र धाम आत्मा है। पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, शरीर, कर्म से रहित उसकी—आत्मा की प्रतीति में, ज्ञान में, भान में जब सम्यग्दर्शन होता है, तब धर्मी को परमात्मा प्रति भक्ति, पूजा, उनका विनय, बहुमान ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। वह भाव आता है, उसको पुण्य परिणाम कहते हैं। शुभभाव कहते हैं। शुभभाव तो मुनियों को भी भक्ति करने में आता है। और गृहस्थ भी भगवान की प्रतिमा, यात्रा, पूजा, श्रवण, मनन में धर्मी गृहस्थों को भी शुभभाव-पुण्यभाव बन्धभाव है तो भी आये बिना रहता नहीं। वह बन्धभाव, मुक्ति का कारण नहीं। वह बन्धभाव-पुण्यभाव से धर्म की प्राप्ति होती है ऐसा नहीं। परन्तु तीव्र राग से बचने को ऐसा मन्दराग, पुण्य, कषाय की मन्दता पुण्य परिणाम आता है, ऐसा यहाँ वर्णन किया है। ३० गाथा चली है। ३१। ६० गाथा है। बोलो।

## गाथा ३१

**पत्ताण सारणिं पिव तुज्झ गिरं सा गई जडाणं पि।**
**जा मोक्खतरुट्ठाणे असरिसफलकारणं होई।।३१।।**

**अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेश! जो अज्ञानी जीव, आपकी वाणी को प्राप्त कर लेते हैं, उन अज्ञानी जीवों की भी वह गति होती है, जो गति, मोक्षरूपी वृक्ष के स्थान में अत्युत्तम फल प्राप्ति की कारण होती है।**

**भावार्थ - जो जीव ज्ञानी हैं, वे आपकी वाणी को पाकर मोक्ष -स्थान में जाकर उत्तमफल को प्राप्त होते हैं, इसमें तो किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं, किन्तु हे भगवन! अज्ञानी पुरुष आपकी वाणी का आश्रय कर मोक्ष-स्थान में उत्तम फल को प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार नदी, वृक्ष के पास जाकर उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण होती है; उसी प्रकार आपकी वाणी भी उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण है; इसलिए आपकी वाणी उत्तम नदी के समान है।**

## गाथा - ३१ पर प्रवचन

**पत्ताण सारणि पिव, तुच्झ गिरं सा गई जडाणं पि।**
**जो मोक्खतरुट्ठाणे, असरिसफलकारणं होइ।।३१।।**

जैसे समीपता को प्राप्त वृक्षों को नदी उत्तम फल रूपी उत्पत्ति का कारण होती है। नदी। जो वृक्ष के समीप नदी जाती है, नदी जाती है, तो उस वृक्ष में उत्तम फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से हे प्रभु! सर्वज्ञ पद में उनकी वाणी निकलती है तो उनके बहाने भक्ति करते हैं। पहले से लिया है। सर्वार्थसिद्धि में भगवान जब पूर्व भव में थे, वहाँ से लेकर यहाँ तक आये हैं। नेमचन्दभाई! वहाँ से भक्ति का प्रारम्भ किया है।

प्रभु! आप जब इस भव के पहले सर्वार्थसिद्धि में थे, तब जो सर्वार्थसिद्धि के देव की शोभा थी, वहाँ से आप निकल गये और जब पृथ्वीतल पर आये, उसके बाद नष्ट हो गयी। ऐसे परमात्मा की भक्ति जहाँ-जहाँ देखते हैं, वहाँ उनका बहुमान आता है। ऐसे करके (कहते हैं), पृथ्वीतल पर आये तो पृथ्वी का वसुमति नाम हो गया। भगवान! आपके कारण से। आपका जन्म हुआ तो इन्द्रों ने, देवों ने आकर पन्द्रह मास रत्न की वृष्टि की। आपके आने से पहले वह वसुमति नहीं थी और आप आये तो पृथ्वी का नाम वसुमति हुआ। उसका अर्थ कि भगवान सर्वज्ञ परमात्मा अथवा तीर्थंकर जहाँ जन्म लेते हैं, वही धन्य क्षेत्र आदि है। ऐसा कहकर भक्ति करते हैं।

कहते हैं, हे जिनेश! **जो अज्ञानी जीव,... 'जडाणं पि'** है न पाठ में? आत्मा का जिसको भान नहीं, मैं कौन हूँ और मेरी आत्मा की प्राप्ति, मुक्ति की कैसे होती है,

इसकी जिसको खबर नहीं, ऐसे अज्ञानी जीव, **आपकी वाणी प्राप्त करते हैं,...** आपकी वाणी को, वाणी तो जड़ है, परन्तु वाणी में कहनेवाला जो भाव है, भगवान की वाणी में क्या आता है ? कि तेरा स्वभाव शुद्ध चिदानन्द वीतराग अविकारी है, उसकी तुम दृष्टि और स्थिरता और राग, पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, (वह) बन्ध का कारण है, उसकी तुम उपेक्षा करो। उसकी अपेक्षा करो नहीं। वजुभाई ! ऐसी वाणी भगवान की है, उस वाणी को जो समझता है, वाणी वाणी के कारण से प्राप्त करते हैं, **वाणी प्राप्त करते हैं,...** ऐसा लिखा है। वाणी प्राप्त करते हैं, इसका अर्थ (क्या) ? वाणी तो वचन है, वचनवर्गणा भगवान की दिव्यध्वनि। उसमें से आगम की रचना हुई, उस वाणी में कहनेवाला वाच्य, वाच्य-भाव। जो आत्मा अविकारी अखण्डानन्द शुद्ध चिदानन्द है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का जो शुभभाव होता है, उस बन्ध के कारण से रहित आत्मा है। ऐसा भगवान की वाणी में आता है। समझ में आया ? ऐसी वाणी को जो प्राप्त करता है, उसको क्या फल मिलता है ?

उनकी भी **वही गति होती है, जो मोक्षरूपी वृक्ष के स्थान में अत्युत्तम फल प्राप्ति का कारण होती है।** जैसे नदी वृक्ष के मूल में जाए तो उसको बड़ा फल आता है। आम का हो तो आम आदि (प्राप्त होते हैं)। इसी प्रकार भगवान हमारे मूल में आपकी वाणी का भाव यदि प्राप्त हो जाए... समझ में आया ? वृक्ष के मूल में नदी जाती है न ? तब फल होता है न ? ऐसे यहाँ कहते हैं, प्रभु ! आपकी वाणी अरागी वीतरागी भवछेदक वाणी और पुण्य एवं पाप का छेद करनेवाली आपकी वाणी है। आपकी वाणी में ऐसी ध्वनि आती है। जो परमात्मपद, वीतरागपद और सर्वज्ञपद प्राप्त करावे, ऐसी आपकी वाणी है। तो वह वाणी जिसके मूल में गयी, जिसकी श्रद्धा-ज्ञान में ऐसा भाव आ गया, उसको अति उत्तम मोक्षफल की प्राप्ति होती है। समझ में आया ? यहाँ बन्ध और बन्ध का फल वाणी में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। आप वीतराग हैं। प्रभु ! आप तो सर्वज्ञ हो। एक समय में तीन काल-तीन लोक सर्वज्ञपद में आप जानते हो और अविकारी पद भी जानते हो। ऐसी जो प्रथम अल्पज्ञता और राग पुण्य-पाप का विकल्प था, उसको छेदकर अल्पज्ञता नाशकर सर्वज्ञ हुए, पुण्य-पाप का नाश कर वीतराग हुए। ऐसी आपकी वाणी सुनकर जिसके मूल में वह पानी प्राप्त हो जाता है, ... ओहो !

जिस वृक्ष के समीप नदी आती है, तब बड़े-बड़े फल हो जाते हैं। ऐसे हे नाथ! आपकी दिव्यध्वनि ऐसी निकलती है कि जिसके मूल में यदि वाणी घूस जाए, वाणी का अर्थ वाणी में कहने में आनेवाला वाच्य। वाणी का उपचार से कथन है। ऐसा आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द शुद्ध सिद्ध समान स्वभाव निर्विकल्प है, उसमें मूल में आपकी वाणी पहुँच जाए तो उसको सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त होकर क्रमशः मोक्षफल की प्राप्ति होती है। उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आपकी वाणी में ऐसी ताकत है। वह निमित्त से कथन है। ताकत तो यहाँ समझे तो निमित्त की ताकत कहने में आती है। नहीं तो ऐसी वाणी भी अनन्त बार सुनी है।

यहाँ तो कहते हैं, हम उस निमित्त की बात नहीं करते हैं। हम निमित्त से कहते हैं, परन्तु आपका भाव हमारे हृदय में घुस गया है कि आप तो आत्मा को ज्ञाता-दृष्टा बताते हो। ज्ञाता-दृष्टा आत्मा। राग का करनेवाला नहीं, पुण्यक्रिया का करनेवाला नहीं, जड़ की क्रिया करनेवाला नहीं। ऐसा आत्मा बताते हो, ऐसा हमारा वृक्ष का मूल है, उसके मूल में यदि आपकी वाणी घुस जाए तो हमें भी मोक्षरूपी फल प्राप्त करने में कोई आश्चर्य नहीं है। अल्प काल में मोक्षरूपी फल प्राप्त करेंगे। ऐसा निःसन्देह आचार्य महाराज अपना हृदय भक्ति में गद्‌गद् होकर कहते हैं और अपनी निःशंकता, निर्भयता और पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति आपकी वाणी से होती है, दूसरे से होती नहीं। कहो, समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा के सिवा ऐसा उपदेश, ऐसा वाणी का वीतरागभाव कभी कोई वाणी में अन्यमति में, अल्पज्ञ में या अज्ञानी में होता नहीं। ज्ञानी

**भावार्थ – जो जीव ज्ञानी हैं, वे आपकी वाणी को प्राप्त कर, मोक्ष स्थान में जाकर, उत्तम फल को प्राप्त होते हैं,...** अज्ञानी में से ज्ञानी निकाला है। **इसमें तो किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं;...** सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा ज्ञानस्वरूप चिदानन्द चैतन्यमूर्ति है, ऐसा राग से रहित होकर; राग हो, परन्तु उसको पृथक् कर, पुण्य-पाप का विकल्प शुभाशुभ उपयोग से पृथक् कर, अपने आत्मा का जिसको भान हुआ, ऐसे ज्ञानी को आपकी वाणी मिले और मोक्ष मिले, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। उसमें तो कोई आश्चर्य नहीं है। समझे?

**किन्तु हे भगवान! अज्ञानी पुरुष भी आपकी वाणी का आश्रय लेकर, मोक्ष**

**स्थान में उत्तम फल को प्राप्त करते हैं।** यहाँ तो बन्ध की बात भी नहीं करते हैं। करते हैं वाणी से। नेमचन्दभाई! प्रभु! ओहोहो! अन्दर उछाला मारता आत्मा अन्दर निर्विकल्प चैतन्यस्वभाव से भरा है, उसकी दृष्टि करने का आपका उपदेश है। उसका ज्ञान कराकर उसमें लीन होने का आपका उपदेश है। बीच में शुभराग आदि आता है, परन्तु वह रखने लायक है, उससे लाभ होगा, ऐसा आपके उपदेश में कभी होता नहीं। ऐसा उपदेश हो, वह वाणी वीतराग की नहीं। वजुभाई! सेठ को सब रखना पड़े न? यहाँ ना कहते हैं, पुण्य से धर्म नहीं होता ऐसा कहते हैं। भगवान की वाणी से भी धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। भगवान की मूर्तिपूजा से भी धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निमित्त से कथन करते हैं, आरोप करते हैं। वीतरागता बताते हैं न। उनकी वाणी में क्या आता है? भवछेदक वाणी, प्रभु! भव का कारण और उसका फल, आपकी वाणी में ऐसा आता ही नहीं। आपकी वाणी तो भव का नाश करानेवाली है। ऐसा समझकर ज्ञानी मोक्ष प्राप्त करे, उसमें क्या आश्चर्य है? हरा वृक्ष पानी चूस ले, उसमें क्या? परन्तु सूखने की तैयारी है, वह भी पानी चूस लेता है तो फल आ जाता है। कहो, समझ में आया? अज्ञानी भी प्राप्त करता है।

**जिस प्रकार नदी, वृक्ष के पास जाकर उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण होती है; उसी प्रकार आपकी वाणी भी उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण है,...** नदी वहाँ जाए। उसका अर्थ बात को घुमाकर लिया है। जो कोई आपकी वाणी के समीप आते हैं, उसको वाणी समीप आयी, ऐसा कहने में आता है। ओहो! कहो, समझ में आता है? धन्नालालजी! वाणी भगवान सुनाने को जाते हैं? भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जहाँ समवसरण में विराजते हैं, उनकी वाणी सुनने को सभा जाती है तो कहते हैं कि सम्यग्ज्ञानी मोक्ष प्राप्त करे, उसमें तो कोई आश्चर्य नहीं है। अज्ञानी अप्रतिबुद्ध मूढ़ जीव आपकी वाणी को प्राप्त कर, आपकी वाणी का भाव समझकर अल्प काल में मोक्ष प्राप्ति करे, उसमें हमें कोई शंका नहीं है। ऐसी आपकी वाणी है। निमित्त से कथन है। भक्ति में तो व्यवहार से कथन है। व्यवहार आरोपित बात है और परमार्थ अनारोपित वस्तु का स्वभाव है।

ऐसे तो भगवान की वाणी अनन्त बार सुनी। यहाँ तो वह बात कहते ही नहीं। हमने तो सुनी वह सुनी, ऐसा कहते हैं। हमने तो आपकी वाणी बराबर सुनी। सुनी का अर्थ वह है, आप कहना चाहते हो, **'सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस वि कामभोगबंधकहा'** इच्छा और इच्छा का फल आपकी वाणी में नहीं आता। वह बन्ध का कारण तो अनादि से सुना है। इच्छा उत्पन्न हो और इच्छा का पुण्यबन्ध हो और उसका फल संयोग हो, ऐसी वाणी तो अनन्त बार सुनी और ऐसी कामभोग की अनन्त कथा अनन्त बार की। आप तो उससे भिन्न बात करते हो। इच्छा और भोग से निवृत्त हो। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु की आप दृष्टि कराते हो। हमारे मूल में आपकी वाणी आ जाती है। हमारे मूल में आपकी वाणी घुस जाती है। मधुर आता है न? पंचास्तिकाय में आता है न? हितकर, मधुर और स्पष्ट। विशद-स्पष्ट। आपकी वाणी प्रभु! हितकर है। हितकर का अर्थ मोक्ष करानेवाली। बन्ध करानेवाली आपकी वाणी है ही नहीं। पंचास्तिकाय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ, (कहते हैं), सर्वज्ञ आपकी वाणी तो हितकर है। हितकर तो मोक्ष है। मोक्ष करानेवाली है, बन्ध करानेवाली आपकी वाणी में भाव आता नहीं। बन्धभाव है, बन्ध का कारण है, उसको तो ज्ञेय के रूप से जान लो। तुम्हारा स्वभाव नहीं है। ऐसी हितकर, मधुर, मनोहर। जिसको आत्मा का रसिकपना प्रगट हुआ है, उसको वीतराग की वाणी मधुर मीठी लगती है। मानो कान में अमृत डाल रहे हो, ...भाई! यह दूसरी बात है, पैसे कमाने की बात नहीं है। यह तो दो-पाँच लाख पैदा हो, फलाना हो, चाचा-भतीजा बैठकर बातें करते हो, उस बात में मिठास लगती हो। यहाँ वह नहीं है, वह सब तो पापकथा है। वजुभाई!

वीतराग! आहाहा! अरे! प्रभु! तेरा चैतन्यस्वभाव है न, भगवान! ज्ञायकस्वभाव है न। परम स्वभाव से भरा परमात्मस्वभाव वीतराग तेरा है न, उसकी दृष्टि कर। मूल में पहुँच जा, मूल में जा। कहते हैं, अज्ञानी का अज्ञान नाश होकर आपकी वाणी उसके पास पहुँच जाती है, तो उत्तम फलों की प्राप्ति होती है। तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अज्ञानी भी ज्ञानी हो जाता है और धर्म की प्राप्ति कर मोक्ष को प्राप्त होता है। ३१ (हुई)। ३२ (गाथा)।

## गाथा ३२

**पोयं पिव तुह पवयणम्मि सल्लीणा फुड़महो कयजडोहं।**
**हेलाए च्चिय जीवा तरंति भवसायरमणंतं।।३२।।**

**अर्थ - जिस प्रकार जिन मनुष्यों के पास जहाज मौजूद है, वे मनुष्य उस जहाज में बैठकर, जिसमें बहुत-सा जल का समूह विद्यमान है, ऐसे समुद्र को बात की बात में तिर जाते हैं। उसी प्रकार हे पूज्य! हे जिनेश! जो मनुष्य आपके वचन में लीन हैं अर्थात् जिन मनुष्यों को आपके वचन पर श्रद्धान है, बड़े आश्चर्य की बात है कि वे मनुष्य भी पलमात्र में, जिसका अन्त नहीं है, ऐसे संसाररूपी सागर को तिर जाते हैं।**

**भावार्थ - हे प्रभो! इस समय संसार में जितने जीव हैं, सब सामान्यतया अज्ञानी हैं। उनको स्वयं वास्तविक मार्ग का ज्ञान नहीं हो सकता है। यदि हो सकता है तो आपके वचन में श्रद्धान रखने पर ही हो सकता है; इसलिए हे प्रभो! जिन मनुष्यों को आपके वचनों पर श्रद्धान है, वे मनुष्य अनन्त संसार-समुद्र को बात की बात में तिर जाते हैं, किन्तु जो मनुष्य आपके वचनों में श्रद्धान नहीं रखते, वे इस संसार-समुद्र से पार नहीं हो सकते। जिस प्रकार जहाजवाला ही समुद्र को पार कर सकता है और जिसके पास जहाज नहीं, वह नहीं कर सकता।**

### गाथा - ३२ पर प्रवचन

**पोयं पिव तुह पवयणम्मि, संलीणा फुडमहो कयजडोहं।**
**हेलाए च्चिय जीवा, तरंति भवसायरमणंतं।।३२।।**

आहाहा! हे नाथ! मानो समवसरण में प्रभु विराजते हों। और इन्द्र जैसे १००८ नाम से स्तुति करते हैं न भगवान की? १००८ नाम से, ऐसे। ये मुनि तो पंचम काल के हैं। भगवान का विरह हुए हजारों वर्ष (हो गय)। हमें विरह नहीं है, ऐसा कहते हैं। हमें तो आपकी वाणी की समीपता हो गयी है। भाई! ओहो! धन्नालालजी! वाणी-भगवान की दिव्यध्वनि तो कहाँ रह गयी।

भगवान! हम पंचम काल के मुनि सन्त दिगम्बर हैं, आपकी वाणी हमारे समीप आ गयी है। जैसा आपने कहा था ऐसा शास्त्र है, ऐसा गुरु ने हमको बताया तो आपकी वाणी हमारे समीप घुस गयी है। आपकी वाणी का हमें विरह है, ऐसा हम नहीं मानते। आपकी वाणी हमारे समीप आ गयी है। हमारे समीप आ गयी है। ओहोहो! उसका अर्थ कि वाणी के भाव के समीप हम आ गये हैं। वाणी में जो भाव कहने में आता है, उसके समीप हम हैं। आपकी वाणी हमारे मूल में आ गयी है।

जिसके पास जहाज विद्यमान है, ३२वीं गाथा। जहाज होता है न, जहाज बड़ा, जिसके पास जहाज विद्यमान है, वे मनुष्य जहाज में बैठकर, जिस प्रकार पुष्कल जल समूह से भरे हुए समुद्र को बात-बात में तिर जाते हैं। आहा! बड़ा समुद्र हो, जहाज साथ में है, जहाज में बैठा है न! बड़ा समुद्र हो तो भी तिर जाता है। ऐसे हे नाथ! हे पूज्यवर! हे पूज्य! हे जिनेश! जो मनुष्य आपके वचन में लीन हैं, वचनों में लीन है अर्थात्? वाणी तो जड़ है। वाणी सुनने के काल में भी राग आता है, शुभ विकल्प है। गणधर सुनते हैं तो भी शुभराग है, पुण्य है। वाणी में कहा हुआ अभेद चैतन्यस्वभाव, अभेद एकाकार स्वभाव अखण्डानन्द अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप है, ऐसी वाणी जो आप कहते हो, उस वाणी में-वचन में मनुष्य लीन हैं। वचनों में लीन है अर्थात् वचनों में कहने में आया भाव, ऐसा अपना निर्विकल्प ज्ञायकस्वभाव, उसमें जो लीन है। अर्थात् जिनको आपके वचन पर श्रद्धान है। क्या कहते हैं?

आपके वचन नाथ! सर्वज्ञ वीतराग, आपकी वाणी बारह अंग, पूर्व एकसाथ निकलती है। ऐसी आपकी वाणी में जिसको श्रद्धा है तो आपकी वाणी में आत्मा जैसा आया, पुण्य-पाप जैसा पृथक् नौ पदार्थ है, नौ पदार्थ है,... पंचास्तिकाय में आता है न? जीव और पुद्गल के संयोग से सात पर्याय होती है। ऐसा वहाँ टीका में शब्द आते हैं। संयोग से सात पर्याय होती है। संयोग से होती है। भगवान आत्मा... राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, वह आस्रव है। वह कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से होती है। और आत्मा में, आत्मा शुद्ध ज्ञायक है, उसके समीप होकर, एकाकार होकर जब सम्यग्दर्शन, ज्ञान अर्थात् संवर, निर्जरा हुई तो कर्म का निमित्त का अभावरूप संयोग वहाँ है। और पूर्ण अभाव होकर मुक्ति होती है। और थोड़ा अभाव होकर अपने में संवर, निर्जरा स्वभाव

समीप होकर होते हैं। भगवान! आपने नौ पदार्थ की पृथकता-पृथकता, नौ का कार्य भिन्न-भिन्न कहा, नौ पदार्थ का कार्य भिन्न-भिन्न कहा। समझ में आया? क्या?

आत्मा का कार्य ज्ञाता-दृष्टा होना। संवर का कार्य राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होना, निर्जरा का कार्य शुद्धि की वृद्धि होना। मोक्ष का कार्य पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होना। और पुण्य-पाप का परिणाम जो होता है, वह आस्रव का कार्य है। आस्रव मलिनभाव है। ओहोहो! और वह अटक-रुक जाता है, वह बन्धकार्य है। ऐसा प्रत्येक पदार्थ का आपने कार्य बताया, उसकी जिसके हृदय में श्रद्धा घुस गयी, उसे मुक्ति का मार्ग हाथ में आ गया। आपके वचनों में श्रद्धा है, वे मनुष्य भी बहुत आश्चर्य की बात है, पलमात्र में अनन्त संसाररूपी सागर को तिर जाते हैं।

श्रद्धानवान। जहाज। बड़ा समुद्र हो तो जहाज से तिर जाता है। ऐसा अनन्त संसारसमुद्र-उदयभाव-विकारभाव पड़ा है, परन्तु आपने कहा ऐसा उसका कार्य और स्वभाव का कार्य जिसकी दृष्टि में आया, श्रद्धान-रुचि बराबर जम गई कि मैं ज्ञायक हूँ, राग-द्वेष आदि पृथक् है, पुण्यबन्ध आदि पृथक् है, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, जप का विकल्प, पूजा, नामस्मरण आदि सब बन्ध का कारण है। वह अपना धर्म नहीं। ऐसी जिसको नौ तत्त्व के कार्य की श्रद्धा बैठ गयी... समझ में आता है? आपके प्रोफेसर से ये दूसरी बात है। उसमें यह बात आती नहीं। वहाँ तो फलाना-फलाना, ढीकना (ऐसा सब आता है)। मैं वीतराग। कहो, सुजानमलजी! ऐ दूसरी बात है या नहीं? दूसरी बात है। आहाहा!

अनन्त संसार तिर जाता है। अनन्त संसार। अनन्त संसार का अर्थ—जो शुभ-अशुभभाव अनेक प्रकार का है, अनन्त परपदार्थ है, उसमें अपनी बुद्धि है, वह मेरा है, वह अनन्त संसार है। और उससे रहित अपना स्वभाव संसारभाव और संसारफल से रहित है, उसकी दृष्टि जिसको हुई, वह अनन्त संसार से तिर जाता है। उसको भव रहता नहीं। समझ में आया? यह मात्र भगवान की भक्ति और शुभराग की बात नहीं है, हों! वह तो पहले से चली आती है। दुनिया मान लेती है कि भगवान की भक्ति करो, पूजा करो।

वह हमारे अजमेर की मण्डली आती है न? तो पहले (संवत्) २००६ की साल

में। दस साल हुए। देखो महाराज! सौभागचन्द डॉक्टर। लो, अंजनचोर भी तिर गया, नि:शंक हुआ तो। अरे! सुनो तो सही। ऐसा नि:शंकपना अनन्त बार किया। क्या तिरे? वजुभाई! भजनमण्डली में सौभागचन्द वहाँ के बड़े हैं न। पूरे मण्डल के बड़े हैं। सब भक्ति वह बनाते हैं। अभी तो पहली बार मिले थे। २००६ की साल। राजकोट। प्रवचन सुने। अंजनचोर भी नि:शंक हुआ तो तिर गया। भक्ति से तिर जाते हैं, यह बात सच्ची नहीं है। जैनदर्शन में ऐसी-वैसी बात है नहीं। वह तो शुभराग था। वह तो भविष्य में आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन पाया तो उसका आरोपपूर्वक कहा। नि:शंक का व्यवहार राग में करके कथन कर दिया है। हजारीमलजी! आते हैं या नहीं आठ? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में नहीं आता है? नि:शंक, नि:कांक्षित आदि आठ नाम आते हैं। तो क्या हुआ? वह तो भविष्य में अपनी वस्तु की स्थिति श्रद्धा-ज्ञान में सर्वज्ञ परमात्मा जैसा आत्मा लिया तो पूर्व के राग में आरोप कर, उससे तिर गया, ऐसा कहने में आया है। ऐसी राग की मन्दता, नि:शंकता तो अनन्त बार की।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रैवेयक उपजायो।' उसमें नि:शंकता नहीं थी? बाह्य की व्यवहार नि:शंकता? 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया, उसमें क्या हुआ? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द की शक्ति का भण्डार पड़ा है। निर्विकल्प अभेद स्वभाव की दृष्टि किये बिना कभी तीन काल, तीन लोक में अनन्त संसार का उद्धार होता नहीं। वह कहते हैं। प्रभु! हमारे अनन्त संसार का उद्धार हो गया। ओहोहो!

**भावार्थ – हे प्रभु! इस संसार में जितने भी जीव हैं, वे सब सामान्यतया अज्ञानी हैं। उनको स्वयं तो वास्तविक मार्ग का ज्ञान नहीं है।** स्वयं को ज्ञान है नहीं। **यदि उन्हें वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति करना है तो आपके वचनों पर श्रद्धान करना आवश्यक है...** दूसरे से कुछ होता नहीं। आप सर्वज्ञ परमात्मा जैन परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ, जिसको सौ इन्द्र पूजते हैं। आपकी वाणी में जो भाव आया, उस भाव की जो श्रद्धा करता है, उसको ही मुक्ति प्राप्त होती है। दूसरे को होती नहीं। **आपके वचनों पर श्रद्धान करना आवश्यक है, अत: हे प्रभो! जिन मनुष्यों को आपके वचनों पर श्रद्धान है, वे मनुष्य, अनन्त संसार-समुद्र को शीघ्रता से ही तिर जाते हैं;...** 'हेलाए'

आया है न ? उसका अर्थ किया है न ? लीलामात्र में। ... लीलामात्र में, शीघ्रता से। प्रभु! आपने जो मार्ग कहा, ऐसा हमको बैठ गया, हमको बात रुचि है। हमारे समीप आप आ गये हो। हमारी श्रद्धा, हमारा ज्ञान शुद्ध स्वभाव में है। तो हम भी अल्प काल में संसार-समुद्र तिर जायेंगे, यह आपकी भक्ति का प्रताप है। ऐसा आरोप करके वर्णन किया है। वास्तविकता से तो निश्चय निज स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान करना, वह अपनी भक्ति है। समझे ? व्यवहार भक्ति का आरोप से कथन करने में आता है। **अनन्त संसार-समुद्र को शीघ्रता से ही तिर जाते हैं; किन्तु जो मनुष्य, आपके वचनों पर श्रद्धा नहीं रखते...** यहाँ-वहाँ भटकते हैं। सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमात जैन परमेश्वर जिनको एक समय में पूर्ण परमेश्वरता प्रगट हुई। आत्मा ज्ञायक खोल दिया। शक्ति में पूर्ण था, पर्याय में-अवस्था में खोल दिया।

भगवान की कथनशैली जो उसमें निकली, वही भगवान की परमात्मदशा को प्राप्त करने की वाणी है। उसको नहीं मानकर दूसरे को मानता है और कहीं भी सिर फोड़ता है, उसको कभी संसार का अन्त आता नहीं। कहो, बराबर है ? सुजानमलजी!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सिर फोड़कर मर जाए, बाहर में क्या है ? सिर ही कहाँ आत्मा का है, वह तो जड़ है। शरीर मिट्टी-जड़ है, धूल है। उपवास करके मर जाए, क्षीण हो जाए छह-छह महीने के उपवास करके, मर जाए तो भी क्या है, यहाँ कहते हैं। सूख हो जाए तो भी धर्म नहीं, उसमें धर्म नहीं है। ओहोहो! भगवान! आपने जो आत्मा का स्वभाव निर्विकल्प वीतराग रागरहित कहा, उसकी श्रद्धा बैठ गयी, हमारा संसार तिरने में देर नहीं है।

जैसे जहाजवाला समुद्र को तिर जाता है। जिसके पास जहाज नहीं है, वह पार नहीं कर सकता। अस्त-नास्ति की। भगवान! आपकी वाणी तो संसार-समुद्र तिरने की नाव है। समझ में आया ? संसार-समुद्र तिरने की नाव आपकी वाणी है। वाणी का अर्थ भाव। ३३ (गाथा)।

## गाथा ३३

**तुह वयणं चिय साहइ णूणमणेयंतवायवियडपहं।**
**तह हिययपईपअरं सव्वत्तणमप्पणो णाह।।३३।।**

**अर्थ - हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आपके वचन ही निश्चय से अनेकान्तवादरूपी विकट मार्ग को सिद्ध करते हैं। हे नाथ! आपका सर्वज्ञपना समस्त मनुष्यों के हृदयों को प्रकाश करनेवाला है।**

**भावार्थ - संसार में जितने पदार्थ हैं, वे समस्त पदार्थ अनेक धर्मस्वरूप हैं। जब और जिस वाणी से उन पदार्थों के अनेक धर्मों का वर्णन किया जाएगा, तभी उन पदार्थों का वास्तविक स्वरूप समझा जाएगा, किन्तु दो-एक धर्म के कथन से उन पदार्थों का वास्तविक स्वरूप नहीं समझा जा सकता।**

**हे भगवन्! आपके अतिरिक्त जितने देव हैं, उन सबकी वाणी एकान्तमार्ग को ही सिद्ध करती है, इसलिए उनकी वाणी, वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नहीं कह सकती, किन्तु आपकी वाणी ही अनेकान्तमार्ग को सिद्ध करनेवाली है; इसलिए वही पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का वर्णन कर सकती है। आपके सर्वज्ञपने से भी समस्त मनुष्यों के हृदय का प्रकाश होता है, अर्थात् जिस समय आप उनको यथार्थ उपदेश देते हैं, उस समय उनके हृदय में भी वास्तविक पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।**

### गाथा - ३३ पर प्रवचन

**तुह वयणं चिय साहइ, णूणमणेयंतवादवियडपहं।**
**तह हिययपईइअरं, सव्वत्तणमप्पणो णाह।।३३।।**

हे जिनेन्द्र! हे प्रभु परमात्मा! **वास्तव में आपके वचन ही अनेकान्तवादरूपी विकट मार्ग को सिद्ध करते हैं...** ओहोहो! क्या कहते हैं? अनेकान्त, आत्मा में त्रिकाल नित्यता भी है और आत्मा में अवस्था का पलटन-परिणमनस्वभाव भी है, यह आपकी वाणी सिद्ध करती है। अज्ञानी कहते हैं, आत्मा नित्य है तो नित्य ही होता है,

अनित्य है तो अनित्य ही होता है ? बौद्ध आदि अनित्य ही मानते हैं, सांख्यमति आदि आत्मा को एकान्त नित्य ही मानते हैं। एकान्तवादी को आत्मा का पता लगता नहीं। आप तो अनेकान्त सिद्ध करते हो।

... आत्मा द्रव्य पदार्थ अपने से है और पर से नहीं है। पर आत्मा पर से है और स्व से नहीं है। अपने से वह नहीं और उससे मैं नहीं। और एक-एक पदार्थ में अनन्त गुण है, एक-एक गुण एक-एक गुण से है और दूसरे गुण से नहीं है। एक-एक समय की पर्याय अपनी पर्याय से है और आगे-पीछे की पर्याय-अवस्था से वर्तमान पर्याय नहीं है। समझ में आया ? मक्खनलालजी ! ऐसा अनेकान्तवाद विकट मार्ग है, विकट मार्ग है। आहा ! लोगों को अनेकांत विपरीत घुस गया है न। भगवान का अनेकान्त मार्ग है। निमित्त से भी होता है और अपने उपादान से भी होता है। ऐसा अनेकान्त है ही नहीं। और व्यवहार क्रियाकाण्ड से भी धर्म होता है और स्वभाव के आश्रय से भी धर्म होता है। ऐसा है ही नहीं। एकान्तवादी का कथन मिथ्यादृष्टि मूढ़ का है।

भगवान ! आप अनेकान्त सिद्ध करते हो। ऐसे होता है, अपने चैतन्यस्वभाव से शान्ति मिलती है और जितना पुण्य-पाप का विकल्प उत्पन्न होता है, उससे बन्ध होता है। उससे शान्ति-धर्म कभी होता नहीं। ऐसा अनेकान्तवाद विकट तो है, सूक्ष्म तो पड़ता है। आपने उसको—अनेकान्तवाद को सरल करके बता दिया है। समझ में आया ?

**अनेकान्तवाद रूपी विकट मार्ग को सिद्ध करते हैं तथा आपका सर्वज्ञपना ही समस्त मनुष्यों के हृदय का प्रकाश करनेवाला है।** ओहो ! दो बात की। एक तो आप प्रत्येक पदार्थ में अस्ति-नास्ति आदि अनन्त-अनन्त धर्मों की बात करते हैं। अस्ति-अपने से है और पर से नहीं, उसका नाम अनेकान्त है। अपने से भी है और पर से भी है, ऐसा अनेकान्तवाद नहीं है। वह तो एकान्त हो गया। कोई भी पदार्थ लो, अँगुली लो तो एक अँगुली अपने से है और दूसरी अँगुली से नहीं है। तो वह अपने से अपने में अस्ति भी धारण करती है और दूसरे से नास्ति भी धारण करती है। उसका नाम अनेकान्त है। ऐसे अपना स्वभाव अविकारी अपने से प्राप्त होता है। विकल्प दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, दानादि का राग हो, उससे उत्पन्न नहीं होता। उससे धर्म उत्पन्न

नहीं होता। ऐसा अनेकान्तवाद विकट मार्ग है तो भी आप उसको सिद्ध कर सकते हैं। कहो, समझ में आया?

सर्वज्ञ की बात है। प्रभु! आप सर्वज्ञ हो। दुनिया को प्रकाशित करते हो। तीन काल तीन-लोक को जानने की ताकत भगवान को प्रगट हुई, वह आत्मा है। सर्वज्ञपद कहाँ से आया? पर्याय कहाँ से आयी? प्राप्त की प्राप्ति है। अन्तर में वह सर्वज्ञशक्ति पड़ी हो तो प्राप्त होता है। बाहर से तो आती नहीं। सर्वज्ञपद को आपने घोषित किया तो प्रकाश हो गया लोगों में। ओहो! हमारा आत्मा भी सर्वज्ञ होने की ताकत रखता है। अल्पज्ञ और राग-द्वेष का अभाव कर आत्मा सर्वज्ञस्वभावी अन्तर में पड़ा है, उसको आत्मा प्राप्त कर सकता है, ऐसा प्रकाश प्रभु! आपने सर्वज्ञपना से किया है।

**समस्त मनुष्यों के हृदय का प्रकाश करनेवाला है।** समस्त मनुष्यों के? क्या कहते हैं? सब मनुष्यों के हृदय में प्रकाश किया। सब मनुष्य मानते थे? प्रभु! मनुष्य ही उसे कहें कि जो आपकी बात मानते हों, उसे मनुष्य में गिनते हैं। भाई! समझ में आया? वह मनुष्य है। दूसरा तो पशु है, तिर्यंच है-पशु है। ... मनुष्य है। आपकी वाणी, सर्वज्ञ हुए और वाणी निकली तो सर्व मनुष्यों के हृदय में प्रकाश करनेवाली है। मन्यते इति मनुष्य, ज्ञायते इति मनुष्य। अपना स्वभाव को प्रकाश करते हैं, उसको मनुष्य कहते हैं। बाहर का (शरीर) मिला, उसको मनुष्य कहते नहीं।

एक बार कहा था न? श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा, मनुष्य किसको कहना? वजुभाई! मोक्षमाला में पाठ लिया है। मोक्षमाला में। सोलह वर्ष में, सोलह वर्ष की उम्र में। श्रीमद् राजचन्द्र। आपके वहाँ हो गये न? ववाणिया, मोरबी के पास। २१ मील है। श्रीमद् राजचन्द्र। संवत् १९२४ में जन्म और १९५७ की साल में देह छूट गया। उन्होंने सोलह वर्ष की उम्र में मोक्षमाला बनायी। १०८ पाठ। सोलह वर्ष की उम्र में। संवत् १९४०, जन्म संवत् १९२४ में। उसमें १०८ पाठ बनाकर मोक्षमाला नाम रखा। उसमें एक मनुष्य का पाठ है। मनुष्य क्यों कहते हैं? पाँच इन्द्रिय है, इसलिए? तो पाँच इन्द्रिय तो बन्दर को भी होती है। परन्तु बन्दर को तुझसे अधिक पूंछ मिली है, तो उसको बड़ा मनुष्य कहना चाहिए। भाई! समझ में आया? इन्द्रिय मिली है, दो पैर है, दो हाथ है, दो आँख

है, नाक है। ऐसा मिला तो बन्दर को भी मिला है। तो बन्दर को तो पूंछ विशेष अधिक में मिली है। तो उसको मनुष्य कहना। नहीं, नहीं। मनुष्य उसको नहीं कहते।

मनुष्य किसको कहते हैं? स्व-पर विवेक करे, उसको मनुष्य कहते हैं। सोलह वर्ष में, हों! केवलचन्दभाई! सोलह वर्ष में। आहा! स्व-पर का विवेक है। विकार भिन्न है, मेरा स्वभाव भिन्न है, शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है, परपदार्थ भिन्न है—ऐसा विवेक करे सो मनुष्य। तो सर्व मनुष्यों को, प्रभु! आपकी सर्वज्ञ की वाणी निकली, सर्वज्ञपद सबको प्रकाशो। ओहो! उसमें विकार और पर की उपेक्षा कर, स्वभाव की अपेक्षा करके सर्वज्ञपद मिला तो सबको ऐसा भान हो गया, हम तो ऐसा मानते हैं। आपकी वाणी का प्रसाद सबको मिल गया। ओहोहो! मुझे मिला तो सबको मिला, ऐसा कहते हैं। लो, वजुभाई! स्वयं का पेट भर गया तो सबका पेट भर गया।

**भावार्थ – हे जिनेन्द्र प्रभो! संसार के समस्त पदार्थ अनेक धर्मस्वरूप है।** जब वाणी द्वारा उस पदार्थों के अनेक धर्मों का वर्णन करने में आता है, तब उसका वास्तविक स्वरूप समझ में आता है। किन्तु एक धर्म के कथन से उस पदार्थ का वास्तविक स्वरूप में समझ में आता नहीं। हे भगवन्! क्या कहते हैं? कोई भी पदार्थ है न? आत्मा हो, परमाणु हो, आकाश हो, धर्मास्ति हो, अधर्मास्ति हो, काल हो। जो पदार्थ है, उसमें एक धर्म नहीं होता। क्यों? कि एक पदार्थ अपना अस्तित्व दूसरे अनन्त पदार्थ के बीच रखता है। अस्तित्व। तो अनन्त-अनन्त पदार्थ से पृथक् रहने की उसमें अनन्त धर्म की ताकत है। समझ में आया?

आपकी कथन पद्धति, अनन्त पदार्थ है, अनन्त आत्मा है, अनन्त परमाणु है। उसमें आपने ऐसा सिद्ध कर दिया कि एक पदार्थ में एक, दो, चार, पाँच संख्यात धर्म होते नहीं। धर्म अर्थात् उसकी ताकत में एक, दो, चार, शक्ति (नहीं है), उसमें अनन्त ताकत है। क्योंकि अनन्त पदार्थ के बीच अपनी शक्ति अपने कारण से टिक रहा है और पररूप कभी हुआ नहीं। आत्मा आत्मापने सदा रहा और परमाणुरूप कभी हुआ नहीं। परमाणु परमाणुपने सदा रहा, दूसरा परमाणुपने और दूसरे आत्मापने कभी नहीं हुआ। ऐसा एक-एक पदार्थ अनन्त पदार्थरूप नहीं हुआ, ऐसा अनन्त धर्म एक-एक में आपने सिद्ध किये हैं। समझ में आया? कठिन बात, भाई! लोग तो बोले, धर्म करो, ये करो,

व्रत करो, उपवास करो, ये करो। अरे! सुन तो सही, वह सब तो राग की क्रिया है। धर्म-बर्म कहाँ रखा है उसमें?

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा का स्वभाव शुद्ध रखता है। तब आत्मा में रागरूप नहीं होना, रागसहित नहीं होना ऐसा भी उसमें धर्म है। रागरहित होना धर्म है और रागसहित नहीं होना उसका धर्म है। समझ में आया? ऐसा अनेकान्त पदार्थ अनन्त धर्म, अनन्त धर्म (युक्त है)। ओहोहो! एक-एक पदार्थ में ज्ञान ज्ञानरूप है, ज्ञान आनन्दरूप नहीं, आनन्द आनन्दरूप है, आनन्द ज्ञानरूप नहीं। परमाणु में रंग है, वह रंग रंगरूप है, वह गन्धरूप नहीं है। गन्ध गन्धरूप है, वह रसरूप नहीं। रस रसरूप है, वह स्पर्शरूप नहीं। वह अपने से है और पर अनन्त से नहीं है। यह है, आप कहते हो, उसमें अनेकान्त धर्म-अनन्त धर्म की सिद्धि हो जाती है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

पृथक्ता बताते हैं, देखो! अनन्त है। और एक पदार्थ में अनन्त गुण है, ऐसा कहते ही अनन्त गुण की पृथक्ता अपना धर्म रखकर, दूसरा धर्म और दूसरे पदार्थरूप नहीं होना, ऐसी ताकत एक-एक गुण, एक-एक द्रव्य, एक-एक पर्याय रखते हैं। बराबर है? नेमचन्दभाई! ओहोहो! क्या कहते हैं? धर्म में ऐसी बात कैसी? अरे! धर्म कोई अचिन्त्य वस्तु है या धर्म की लोगों ने कल्पना कर ली है? कि कर लिया—पाँच-पचास हजार का खर्च कर दिया। दो-पाँच-पच्चीस मन्दिर बना दिये। धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं है, सुन तो सही। धर्म कहाँ से आया? ऐ.. वजुभाई! पोपटभाई!

**मुमुक्षु :** भावनगर...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसने बराबर किया था। बहुत समझकर किया था उसने। ठीक याद किया। राजकुमार ने इन्दौर में किया था न। बराबर सात प्रवचन सुनकर आधा घण्टा बोले थे। बहुत बोले थे। राजकुमार। वजुभाई वहाँ बोले थे।

वास्तविक स्वरूप समझ में आता है। परन्तु दो ही धर्म के कथन से पदार्थ का वास्तविक स्वरूप समझ में नहीं आता। आहाहा! वह एक पदार्थ की व्याख्या की। पदार्थ है। पदार्थ में धर्म अर्थात् शक्ति एक नहीं होती। अनन्त शक्ति बिना पदार्थ होता ही नहीं। अनन्त-अनन्त शक्ति के बिना अनन्त पदार्थ के बीच में अपना अपनत्व टिकना,

रखना, वह अनन्त शक्ति, संख्या से अनन्त शक्ति, हों! टिकना तीन काल नहीं, वह तो काल की अपेक्षा से, परन्तु एक पदार्थ में अनन्त पदार्थ के बीच में रहना और अनन्त परपदार्थरूप नहीं होना, उसकी अनन्त ताकत आप सिद्ध करते हो। एक परमाणु हो या एक आत्मा हो या एक आकाश हो या एक कालाणु हो। छहों द्रव्य में भगवान! आप अनन्त धर्म सिद्ध करते हो।

एक बार कहा था, कहा था न? सम्प्रदाय में पूछा था। धर्मास्तिकाय के गुण कितने? तो कहा, दो। अरूपी और गति। ये बैरिस्टर। ऐ... छोटाभाई! ये आपके बैरिस्टर। कहाँ गये मलूकचन्दभाई? धर्मास्तिकाय पदार्थ है न? उसमें एक गति धर्म और एक अरूपी (धर्म)। बस! हो गया? बस, क्या पढ़ते रहते हो? मुझे कहा। दो वर्ष की दीक्षा के पहले। (संवत्) १९७२। बस, दो वर्ष है। कुछ खबर नहीं। और माने क्या? हम जैन के बैरिस्टर हैं। आप थे या नहीं? मलूकचन्दभाई! सुना था? अरे..! भगवान!

सर्वज्ञ परमात्मा ने पदार्थ का वर्णन किया, वह पदार्थ है। अनन्त। अनन्त कहते ही अपने स्वभाव में एकरूप नहीं होना, दूसरेरूप नहीं होना, तीसरेरूप नहीं होना, चौथेरूप नहीं होना, ऐसे अनन्तरूप नहीं होना। ऐसी अनन्त ताकत सिद्ध की। एक-एक पदार्थ में अनन्त गुण है। है, ऐसा सिद्ध करते हैं। एक गुण दूसरा गुणरूप नहीं, तीसरा गुणरूप नहीं, अनन्त गुणरूप नहीं है। एक द्रव्य की एक समय की पर्याय-अवस्था-हालत-पूर्व की पर्यायरूप नहीं, भविष्य की पर्यायरूप नहीं, गुणरूप नहीं, द्रव्यरूप नहीं, अनन्त दूसरी पर्यायरूप नहीं। उसके बिना पदार्थ सिद्ध होता नहीं। कहो, समझ में आया?

हे प्रभु! हे भगवन! आपके सिवा जितने देव हैं, उन सबकी वाणी एकान्त मार्ग को सिद्ध करती है। एक धर्म, दो धर्म की शक्ति अथवा तो एक ही आत्मा है। या तो आत्मा का स्वरूप विज्ञानस्वरूप एक ही है, ऐसी बात करते हैं। या तो आत्मा अनित्य ही है, या तो आत्मा नित्य ही है, या तो आत्मा शुद्ध स्वभावरूप है तो पर्यायरूप भी शुद्ध ही है। या तो पर्याय अशुद्ध है तो वस्तु भी त्रिकाल अशुद्ध है। ऐसा एक-एक धर्म की बात करनेवाले वस्तु-पदार्थ को सिद्ध कर सकते नहीं। पदार्थ जैसा है वैसी वास्तविक बात ही सिद्ध कर सकते नहीं। आपकी तरह वास्तविक वस्तु का स्वरूप सिद्ध करनेवाले नहीं हैं।

इसलिए उनकी वाणी वस्तु के वास्तविक स्वरूप का कथन नहीं कर सकती। ऐसा तो कहे न कि, तुम हो? हाँ। कब का है? अनन्त काल से। अकेला या पर से (है)? हूँ तो अपने से। मैं पर से नहीं हूँ। पर से नहीं हूँ और स्व से हूँ। उसमें पूरा हो गया। अनन्त धर्म उतने में, एक समय में सिद्ध हो गये। अनन्त धर्म नहीं हो तो वह पदार्थ अपने से टिक सकता नहीं। ऐसी वाणी परमात्मा आपके सिवा होती नहीं। कहो, बराबर है? ये भक्ति करते हैं, भक्ति। बड़ी भक्ति, भाई!

यह वास्तविक पदार्थ का ज्ञान और श्रद्धा करना, उसका नाम आत्मा की भक्ति (है)। वही निश्चय भक्ति है। भगवान की भक्ति आदि, पूजा, स्तुति आदि तो शुभभाव व्यवहार भक्ति कहने में आती है। परन्तु निश्चय भक्ति हो तो व्यवहार कहने में आती है। निश्चय नहीं हो तो व्यवहार कहने में आता नहीं। क्योंकि उसमें भी धर्म सिद्ध हुआ कि निश्चय में व्यवहार धर्म नहीं और व्यवहार में निश्चय धर्म नहीं। समझ में आया?

भगवान! आप ही उस बात को सिद्ध कर सकते हो। दूसरे की ताकत नहीं है। अज्ञानी देव कि जिसने तीन काल जाना नहीं, सर्वज्ञपना प्रगट नहीं हुआ है, उसने पदार्थ की ताकत की स्थिति भी जानी नहीं। तो दूसरा वह बात सिद्ध नहीं करेगा। आपकी वाणी अनेकान्त मार्ग को सिद्ध करनेवाली है। देखो! सम्यग्दर्शन। आत्मा अखण्ड आनन्द से भरा है, उसकी प्रतीत सम्यग्दर्शन (है)। और उसकी श्रद्धा नहीं करनी, वह मिथ्यादर्शन। और मिथ्यादर्शन में सम्यग्दर्शन नहीं, और सम्यग्दर्शन में मिथ्यादर्शन है ही नहीं। अपना ज्ञान हुआ सम्यक् में, चैतन्य स्वसंवेदन हुआ तो उस ज्ञान में अज्ञान नहीं। और आत्मा का भान नहीं और अज्ञान है, उसमें सम्यग्ज्ञान नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। स्वभाव स्वरूप का भान होकर स्थिर हुआ चारित्र, उसमें अचारित्र नहीं है। पंच महाव्रत का विकल्प आदि उठते हैं, वह अचारित्र है। अट्ठाईस मूलगुण का (विकल्प) मुनि को उठता है, वह भी अचारित्र है। अचारित्र में चारित्र नहीं और चारित्र में अचारित्र नहीं। समझ में आया? ऐसी बात तो प्रभु! आप ही कर सकते हो। इसलिए उसी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप का वर्णन कर सकते हैं।

तथा **आपके सर्वज्ञपने से समस्त मनुष्यों के हृदय का प्रकाश होता है।** सर्व पदार्थ का स्वरूप जाना और कहा और वैसी ताकत आपको प्रगट हुई, ऐसी ताकत जो

दृष्टि में आदर्श लेता है, कि ओहो! मैं भी ऐसा ही आत्मा हूँ। वह भी आत्मा है। मेरी जाति का आत्मा है। उसे ऐसी शक्ति प्रगट हुई तो आदर्श के रूप में मेरे आत्मा में भी ऐसी सर्वज्ञशक्ति अन्दर में पड़ी है। सर्वदृष्टा सर्वज्ञशक्ति में वर्णन आया। सर्वज्ञशक्ति है, उसके आश्रय से मेरा सर्वज्ञपद होगा, ऐसा प्रकाश आत्मा को सक्ष्यग्ज्ञान का आपकी वाणी से मिलता है, दूसरे की वाणी से मिलता नहीं। समझ में आया?

**समस्त मनुष्यों के हृदय का प्रकाश होता है अर्थात् जिस समय आपका यथार्थ उपदेश होता है,...** यथार्थ न? यथार्थ उपदेश आप देते हो, **उस समय अन्य जीवों के हृदय में भी पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है।** धर्म का मूल सर्वज्ञ है, ऐसा कहते हैं। धर्म का कथन करनेवाले सर्वज्ञ परमात्मा। ज्ञान की पूर्ण शक्ति का विकास जिसको हुआ, वही धर्म का कहनेवाले हैं। आपने कहा तो दुनिया के हृदय में प्रकाश हो गया। हम भी सर्वज्ञ होने के लायक हैं। हम अल्पज्ञ या राग में रहने के लायक नहीं हैं। ऐसा प्रकाश हृदय में आपकी वाणी से होता है। ३४ (गाथा)।

## गाथा ३४

**विप्पडिवज्जइ जो तुह गिराए मइसुइबलेण केवलिणो।**
**वरदिट्ठिदिट्ठणहजंतपक्खिगणणेवि सो अंधो।।३४।।**

**अर्थ - हे भगवन्! जो मनुष्य, मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान के ही बल से आप केवली के वचन में विवाद करता है, वह मनुष्य उस प्रकार का काम करता है कि जैसे, अच्छी दृष्टिवाले मनुष्य द्वारा देखे हुए आकाश में जाते हुए पक्षियों की गणना में जिस प्रकार अन्धा संशय करता है।**

**भावार्थ - जिसकी दृष्टि तीक्ष्ण है - ऐसा कोई मनुष्य यदि आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की गणना करे और उस समय कोई पास में बैठा हुआ अन्धा पुरुष उससे पक्षियों की गणना में विवाद करे तो जैसे उस सूझते पुरुष के सामने उस अन्धे का विवाद करना निष्फल है; उसी प्रकार हे प्रभो! हे जिनेश! यदि कोई केवल मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान का धारी आपके वचन में विवाद करे तो उसका भी विवाद करना**

**निरर्थक ही है, क्योंकि आप केवली हैं तथा ज्ञान में समस्त लोक और अलोक के पदार्थ हाथ की रेखा के समान झलक रहे हैं और वह प्रतिवादी मनुष्य, मतिज्ञान-श्रुतज्ञान का धारी होने के कारण थोड़े ही पदार्थों का ज्ञाता है।**

## गाथा - ३४ पर प्रवचन

**विप्पडिवज्जइ जो तुह गिराए मइसुइबलेण केवलिणो।**
**वरद्दिट्ठिदिट्ठणहजंत-पविखगणणेवि सो अंधो।।३४।।**

आहा! अब, दूसरे के साथ मिलान करके बात करते हैं। भगवान! आपकी आँखें... प्रवचनसार में कहते हैं कि सर्वज्ञ के असंख्य प्रदेश में अनन्त चक्षु हैं। सर्वचक्षु। उसको सर्वचक्षु कहते हैं। असंख्य प्रदेश में शक्ति है। जैसे छोटी पीपर में, छोटी पीपर के दाने-दाने में चौसठ पहरी तीखास-ताकत-चरपराई पड़ी है तो प्रगट होती है। है तो प्रगट होती है। ऐसे अपने आत्मा में, एक-एक आत्मा में सर्वज्ञ और पूर्णानन्द की शक्ति पड़ी है। नेमचन्दभाई! बराबर होगा यह?

**हे भगवान! जो मनुष्य, मतिज्ञान...** क्या कहते हैं? देखो! **मतिज्ञान-श्रुतज्ञान...** यहाँ श्रुत अज्ञान लेना। उसके **बल से आप केवली के वचनों में विवाद करता है;...** सर्वज्ञ ने ऐसा कहा है, उसमें वाद करते हैं। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। अरे! परन्तु तू अन्धा है। मति और श्रुत अज्ञान है, अन्धा है। और जो देखता है, उसके साथ तू वाद करता है, तेरा वाद निरर्थक है। भगवान! वह मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान के बल से आप केवली के वचन में विवाद करते हैं। उनका वह कार्य ऐसा है कि **अच्छी दृष्टिवाले मनुष्य द्वारा आकाश में की गयी पक्षियों की गणना में अन्धे व्यक्ति के समान संशय करता है।** क्या कहते हैं? स्पष्ट आँखोंवाले ने १०८ बगुले देखे। अन्धा कहता है, नहीं। तेरी बात झूठी है। लेकिन तूने देखा नहीं, सुना नहीं। आकाश में उड़ते हैं, तेरी नजर पहुँचती नहीं। हमारी तो नजर पहुँचती है कि देखो, एक-एक, एक-एक, चलते-चलते, चलते-चलते गिन लिया। उसके साथ अन्धा विवाद करे, संशय करे कि आपकी बात किस प्रकार से झूठी है? क्या कारण से झूठी है? देखा है तूने?

आकाश में उड़ते पक्षी, उड़ते पक्षी। गति करते हुए पक्षी लिये न। नीचे हो तो हाथ लगाकर अन्धा गिने। हाथ लगाकर। मूल नजर तो है नहीं। समझ में आया?

भगवान! स्पष्ट दृष्टिवाला आकाश में उड़ते पक्षियों की गणना करके कहता है कि १०८ हैं। अन्धा कहता है, नहीं। क्यों नहीं है? कारण क्या? तुझे रंग का भी भान नहीं, आकाश में तेरी नजर पहुँचती नहीं, गति करते हैं, तेरी नजर घूमती नहीं। नजर ही नहीं है तो घूमे कहाँ से? किसके साथ तू वाद करता है? अन्धा। अन्धे का दृष्टान्त नहीं आता? आया था न? अभी दिया था न? भाई! एक अन्धा था। उसको दूध दिया। दूध कैसा है? भाई! अन्धा बेचारा जन्म से होगा। दूध कैसा है? एकदम सफेद है। दूध सफेद है। सफेद कैसा? बगुला जैसा। बगुला कैसा है? ऐसा हाथ किया। दूध देनेवाला अन्धे को (कहता है)। अन्धे ने पूछा, आप दूध देते हो, वह दूध कैसा है? सफेद। सफेद कैसा? बगुला जैसा। बगुला कैसा है? तो कहा, ऐसा। अन्धा कहता है, ऐसा बगुले जैसा दूध मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा। परन्तु तुझे भान नहीं है। हम तो (कहते हैं), बगुला सफेद होता है। तूने पूछा, बगुला कैसा है? दूध ऐसा क्या है? भान नहीं, खबर भी नहीं है। हम सफेद रंग बताते हैं, तो तू कहता है कि बगुला कैसा है? बगुला ऐसा है कहा तो, तू कहता है कि ऐसा दूध मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा। मूढ़ है।

इसी प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा अनन्त सर्वचक्षु है। तीन काल तीन लोक देखा, उसमें जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का मार्ग बताया, अपनी ऋद्धि सम्पदा अन्दर बोलकर बतायी कि देख, तेरी ताकत इतनी है। अल्पज्ञ ज्ञान में तुझे विशेष ज्ञान होता है। अल्प ज्ञान के अभाव में विशेष आया कहाँ से? अल्प ज्ञान तो चला गया, विशेष (ज्ञान) हुआ। व्यय हुआ, उत्पाद हुआ। तो आया कहाँ से? तेरी शक्ति में अधिक ज्ञान पूर्ण पड़ा है, उसके अवलम्बन से आता है। ऐसा भगवान! आप सर्वज्ञ से बात करते हो, अन्धा विश्वास नहीं करता है। अन्धा संशय करता है कि ऐसा नहीं होता।

अभी तो कितने ही लोग सर्वज्ञ का संशय करते हैं न। एक समय में भगवान तीन काल तीन लोक जाने। तब, तो सबकी बात का अन्त हो गया, सबकी बात का अन्त हो गया। अरे! मूढ़! तू क्या (कहता) है? अन्त क्या? अनन्त है, उसको अनन्त जानते हैं। जानते हैं तो वहाँ अनन्त का अन्त आ गया? समझ में आया? वजुभाई! क्या कहते हैं?

छैनी होती है न? छैनी। गोल छैनी होती है न? गोल। छैनी मारते हैं न? ... कहाँ से उसकी शुरुआत हुई? शुरुआत देखे बिना उसे देखी हम नहीं कहते। परन्तु शुरुआत है नहीं, ऐसा देखा। गोल है, ऐसा गोल है। थाली गोल होती है न? थाली है, देखकर कहा। थाली का किनारा कहाँ से शुरु हुआ? शुरु हुआ ऐसा देखो नहीं तो देखा नहीं। परन्तु शुरुआत है नहीं तो कहाँ से शुरुआत जाने? गोल चक्कर है।

ऐसे वस्तु अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त है, आदि कहाँ? अन्त कहाँ? ऐसी चीज़ है, ऐसी ज्ञान में लेते हैं। अन्धा। मति-श्रुत के तर्क से, वितर्क से अज्ञानी मूढ़ तर्क करता है। वह अन्ध जैसा है। सर्वज्ञ के पास ... कहो, बराबर है?

**भावार्थ – जिसकी दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण है, ऐसा कोई मनुष्य, आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की गणना करे और उस समय पास में बैठा हुआ कोई अन्धा पुरुष, उन पक्षियों की गणना में विवाद करे...** गणना में विवाद करे। अरे! परन्तु तूने देखा नहीं और गिनती कहाँ से लाया? ऐसे भगवान ने देखे अनन्त पदार्थ, अनन्त आत्मा, अनन्त गुण, भान नहीं है। तू अन्धा है और उसके साथ वाद करने जाता है। व्यर्थ में भटक जाएगा, कहते हैं। जैसे उस तीक्ष्ण दृष्टिवाले पुरुष के सामने **उस अन्धे का विवाद करना निष्फल है;...** निष्फल है न देखनेवाले के सामने?

**उसी प्रकार हे प्रभो!** हे जिनेश! **कोई मति-श्रुतज्ञानधारी, आपके वचनों में विवाद करे तो उसका विवाद करना निरर्थक ही है। क्योंकि आप केवली हैं। आपके ज्ञान में समस्त लोक-अलोक के पदार्थ, हाथ की रेखा के समान...** हाथ की रेखा देखे, ऐसे भगवान देखते हैं। सब देखते हैं। उसमें विवाद करता है तो सर्वज्ञपद और आत्मा की पूर्णता की तुझे खबर नहीं है। उसके साथ तू विवाद करता है तो निरर्थक सिर फोड़ रहा है। समझे? **हाथ की रेखा के समान झलक रहे हैं...** देखो! **और प्रतिवादी मनुष्य के पास...** यहाँ ज्ञान अर्थात् अज्ञान लेना, हों! सम्यक्ज्ञानी भगवान की वाणी में विवाद करते नहीं। वह तो स्वीकार करता है, यथार्थ है, प्रभु! आपकी वाणी में पदार्थ का स्वरूप, जो तत्त्व है वह त्रिकाल निःशंक ... सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा ने जो मार्ग कहा, पदार्थ कहा वैसा है, उसमें शंका होती नहीं। ये तो अज्ञानी की बात करते हैं।

**और प्रतिवादी मनुष्य के पास...** जो मतिज्ञानधारी हो और आपके साथ (विवाद) करे तो (उसे) थोड़े पदार्थ का ज्ञान है। वह आपके साथ (वाद) करे तो वह मूर्खता में जाता है। कोई पचास हजार या एक लाख रुपये का खर्च करे। परन्तु उसका पुत्र विवाह करता है और वह एक लाख का खर्च करता है तो मैं क्यों नहीं खर्च करूँ? मैं एक लाख रुपये का खर्च करूँगा। अभी एक कहता था, बीस लाख खर्च करने हो तो क्या है? ओहो! लेकिन तेरे पास तो लाख रुपया भी नहीं है, ये क्या बोलता है? तेरे बाप के पास एक लाख नहीं है। बीस लाख का खर्च करना है, उसमें क्या है? तीन-चार लाख रुपया इकट्ठा होना मन्दिर के लिये, उसमें क्या है? तीन-चार लाख तुझे मालूम नहीं है। किसे तीन-चार लाख कहना।

ऐसे मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी शास्त्र, पदार्थ, मार्ग में संशय करे वह अन्ध मनुष्य के समान है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)